धरती

साहित्य की अनियतकालीन पत्रिका

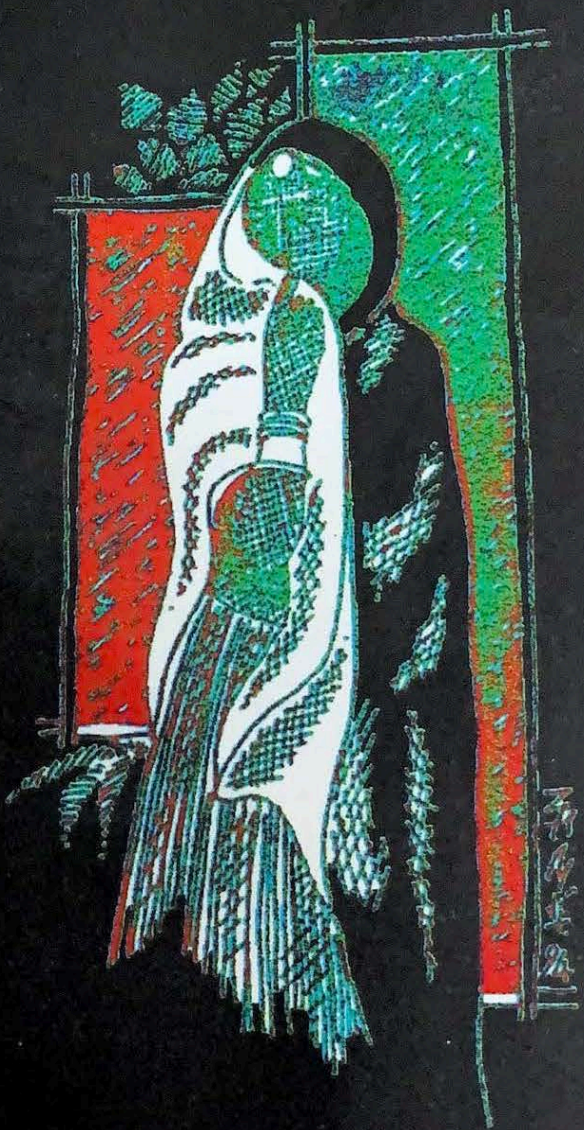

संपादक
शैलेन्द्र चौहान

जनवरी-जून, 2012 • अंक : 15

धरती

धनात्मक वैज्ञानिक सोच का अनियतकालिक आयोजन

सम्पादक
शैलेन्द्र चौहान

प्रकाशक
श्रीमती मीना सिंह
34/242, प्रतापनगर, जयपुर-302033

संपादकीय कार्यालय
34/242, सेक्टर-3
प्रतापनगर, जयपुर-302033
ई-मेल : dharati.aniyatkalik@gmail.com

आवरण छायाचित्र
बंधु सेमन्त हरीश
सम्पर्क : 08812023524, 09782777788

मूल्य
एक प्रति : 25 रुपये मात्र
वार्षिक : 100 रुपये मात्र (व्यक्तिगत)
500 रुपये मात्र संस्थाओं के लिए

आजीवन सदस्य
1000 रुपये मात्र

मुद्रण
तरु ऑफसेट, एफ-77, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया
बाईस गोदाम, जयपुर-302006
मो. : 098290-18087

धरती' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादक तथा प्रकाशक की वैचारिक सहमति आवश्यक नहीं है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

स्वतंत्रता, देश, समाज, संस्कृति — 3

स्मरण

शिवराम की जनधर्मी कविता — जीवन सिंह — 5

विशेष : जम्मू कश्मीर राज्य का संक्षिप्त इतिहास — 10

चर्चा-परिचर्चा

कश्मीर घाटी के हालात : बुद्धिजीवियों की नजर में — 12

प्रतिक्रिया : संजना कौल का पत्र — 44

चिंतन

यथार्थवाद और रोमांसवाद — शिवराम — 48

परख

रंगभूमि में तहजीबों की लड़ाई : कुछ हकीकतें, कुछ अफसाने — सुल्तान अहमद — 53

कश्मीर से...

कहानी/डायरी/कविताएं — निदा नवाज़ — 61

कविताएं

मायामृग-72/ तेजराम शर्मा-74/ ओमप्रकाश अडिग-76/ ओमप्रकाश शिव-78/ सुरेन्द्र दीप -83

मराठी कविता : आधा आकाश सिर पर — 86

भाषान्तर

श्रीधर पवार की कविताएं — गोपाल नायडू — 91

आकलन

जन-गण-मन के अधिनायक उपन्यासकार 'नागार्जुन' — मोतीलाल — 96

नागार्जुन के उपन्यासों का आंचलिक वातायन — डॉ. अलका पाण्डेय — 102

कला

कला में स्त्री का वजूद — गोपाल नायडू — 109

क्षय

वैचारिक पक्षधरता के परिप्रेक्ष्य में वतन के विभाजन की त्रासदी — राम आह्लाद चौधरी — 114

बहस : खण्ड-खण्ड पाखण्ड — 129

समीक्षा

कल्पना के सहारे : केसरवाला — रमेश खत्री — 132

स्वतंत्रता, देश, समाज, संस्कृति

क्या कोई स्वतंत्र देश मात्र एक भौगोलिक इकाई भर होता है? या राजनीतिक सत्ता उसे देश बना देती है? मनुष्य समाज और उसकी आकांक्षाएं, संबंध, विचार, संस्कृति और सभ्यता क्या देश का हिस्सा नहीं होतीं क्या मुख्य रूप से सत्ता और सीमाएं ही देश का निर्माण करती हैं? तब इस वसुधा को कुटुम्ब मानना क्या महज एक जुगाली है? आर्थिक स्थिति का राज सत्ता से क्या संबंध होता है? क्या किसी देश की आर्थिक स्थिति उसके नागरिकों की आर्थिक स्थिति से कोई ताल्लुक नहीं रखती? क्या मनुष्य समाज और भूगोल विरोधी ध्रुव है? राहुल सांकृत्यायन की 'इक्कीसवीं सदी' और देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय के 'लोकायत' के क्या अभिप्राय हैं। गण-समाज और विश्वदृष्टि के प्रत्यय क्या क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं के अधीन हो चुके हैं? क्यों संयुक्त राज्य अमेरिका किसी भी संप्रभु, स्वतंत्र देश पर जब जी चाहे आक्रमण कर देता है? क्यों पश्चिम एशिया और अफ्रीका के देशों में गृहयुद्ध लगातार चलता रहता है? क्यों चीन, अरुणाचल प्रदेश को अपना हिस्सा मानता है? क्यों बाल्टिस्तान और पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में निरंतर तनाव रहता है? सोवियत रूस के टुकड़े-टुकड़े होने के पीछे क्या कारण अंतर्निहित थे? बांग्लादेश स्वतंत्र अस्तित्व में क्योंकर आ जाता है?

प्रश्नों और जिज्ञासाओं का एक अनंत सिलसिला है जो मानव समाज की बेहतरी और प्रगति से जुड़ता है। क्यों हम एक अच्छे, सुखी और सामाजिक, सभ्य, सुसंस्कृत और विचारवान मनुष्य की तरह नहीं जीना चाहते? क्यों हम एक क्रूर सत्ता और विकृत राजनीति की शरण में सदैव रहना चाहते हैं? सहज और सामान्य उत्तर होगा कि यह संभव नहीं है। मित्रो इस दुनिया में बहुत कुछ असंभव था वह संभव हुआ है। तब अगर मनुष्य समाज चाहे तो यह भी संभव हो सकता है कि सीमाएं ही न हों। एक समता आधारित व्यवस्था हो। शोषण का हक किसी को न हो।

यह कठिन है पर असंभव नहीं। मेरी जब जम्मू में पोस्टिंग हुई तो मैं खुश नहीं था। एकाध बार पहले भी 1997 में मैं जम्मू आया था पर तब मैं सिर्फ कश्मीर के आतंकवाद से

परिचित था, जो पंजाब के आतंकवाद के समाप्त होते ही अवतरित हो चुका था। स्व. विश्वनाथ प्रतापसिंह इसे देश की सबसे बड़ी समस्या बता रहे थे और वास्तव में ऐसा था भी। कालांतर में बहुत खून-खराबे और निर्मम हत्याओं के बाद का एक विचलित कश्मीरी मन अब वहाँ दिखाई दिया। मैं जब वहाँ पहुंचा तो पत्थर बाजी का दौर था। धीरे-धीरे वह भी थमा है पर मन के अंदर जो पत्थरबाजी कश्मीरी अवाम में हो रही है वह कब तक थमेगी, नहीं कहा जा सकता।

मैं बचपन से ही कश्मीर के प्रति बेहद आकर्षित होता था, भारत का स्वर्ग हिमालय और देवदार के वृक्ष। मैंने बहुत कल्पनाएं कीं कश्मीर ऐसा होगा, वैसा होगा। फिर लगा कि वह जैसा भी होगा पर आतंकी हिंसा के दौर में उसे देखा नहीं जा सकता। परंतु अंतत: मैंने कश्मीर की धरती पर अपने पाँव रखे और मैंने कश्मीर में सिर्फ भूगोल नहीं देखा बल्कि मनुष्य, उनकी जीवन शैली, संस्कृति, सोच, कला और आर्थिक स्थितियां भी देखीं। उनकी कठिनाइयों को भी अनुभव किया।

बर्फ देखना एक रोमांचक अनुभव हो सकता है पर उसी बर्फ में छह माह तक रहना कितना कष्ट साध्य है यह तो वहां रहकर ही जाना जा सकता है। बहरहाल मैं आभारी हूं मेरे उन मित्रों का, जिनसे लगातार चर्चा करके मैं कश्मीर की अंदर के स्थितियां कुछ देख-समझ सका, जो अत्यंत जटिल हैं और जिन्हें सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता।

'धरती' का यह अंक कुछ पत्रकारों-बुद्धिजीवियों और राजनीतिकों के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा है। यह बहुत ऊपरी कोशिश है पर इसके पीछे एक निश्छल भावना है। उम्मीद है, यह अंक आप सभी को अच्छा लगेगा।

कतिपय कारणों से यह अंक अत्यधिक विलंब से निकल पाया है, इस हेतु मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस अंक को मैं मेरे अभिन्न मित्र, साथी शिवराम की स्मृति को समर्पित कर रहा हूँ।

-शैलेन्द्र चौहान

स्मरण

जीवन सिंह

शिवराम की जनधर्मी कविता

शिवराम विगत 1 अक्टूबर, 2010 के दिन स्मृति शेष हो गए। काल से होड़ लेने वाला एक रचनाकार और जनपक्षधर विचार का एक सक्रिय कार्यकर्ता, जननेता और एक ईमानदार आत्मीय व्यक्ति हमारे बीच से चला गया। प्रकृति पर किसी का नियन्त्रण नहीं। ऐसा सभी के साथ आगे-पीछे होना ही है। अभी तक प्रकृति की मर्यादाओं और सीमाओं से कोई आगे नहीं जा पाया। ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध चलने का प्रयास करता है, त्यों-त्यों वह उसके जाल में उलझता चला जाता है। कैसी विडम्बना है कि इसके बावजूद वह प्रकृति के विरुद्ध चलना चाहता है। शिवराम की कोशिश रही है कि वह अपने समय और समाज को प्रकृति के अनुकूल करे। प्रकृति का मतलब यहां केवल पर्यावरण से नहीं होकर उस सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक और वैयक्तिक पर्यावरण से है, जो व्यक्ति, समाज और देशों का रूप निर्धारण करते हैं। सच तो यह है कि वे इस दुनिया को एक रंगमंच की तरह देखते थे और मानते थे कि इस पृथ्वी पर रहने वाले लोग एक नाटक की भूमिका में है। प्रसाद के शब्दों में-

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहां
ठहरा जिसमें जितना बल है।

इन पंक्तियों में कही गई बात से प्रथम दो पंक्तियों को शिवराम मानते थे, किन्तु उससे आगे ठहरा जिसमें जितना बल है की सर्वाइबल ऑफ द फिटेस्ट जैसी डार्विन की पशुधर्मी मान्यता में उनका विश्वास नहीं था। इन्सान, इस पृथ्वी पर अकेली ऐसी प्रजाति है जो सर्वाइबल ऑफ द फिटेस्ट के विरुद्ध जाकर दुर्बल और पीड़ित पक्ष में खड़ी होती है। यद्यपि मनुष्यों की दुनिया में भी उक्त नियम चलता नजर आता है तथापि गहराई में उतरकर देखें, तो मनुष्यों की दुनिया में इस नियम का अतिक्रमण करने वाले उदाहरण मिलते हैं। यदि सर्वाइबल ऑफ द फिटेस्ट का सिद्धान्त माना जाता, तो इस पृथ्वी पर कभी महात्मा बुद्ध,